

Prof. Shubh Kumar

Assistant Professor in Sanskrit

Govt. Degree College, Kathua.

E-Content:

B.A. 3rd Sem, Unit-IV, JU Core Course

श्रीरामगीता अध्यात्म रामायण, उत्तरकाण्ड

(श्लोक संख्या 01–20 सप्रसंग व्याख्या)

“श्री रामगीता”

‘श्रीरामगीता’ वास्तव में अध्यात्म रामायण के उत्तरकाण्ड का पाँचवाँ सर्ग है। इसमें भगवान शिव पार्वती को श्रीराम की कथा सुनाते हैं एवं इसमें उस समय का विवरण दृष्टिगोचर होता है, जब श्रीराम गर्भिणी सीता को लक्ष्मण के द्वारा वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में पहुँचा देते हैं, क्योंकि वहाँ उन्हें स्वजन रंजनता की तुलना में प्रजा रंजनता अधिक प्रिय एवं वरेण्य लगती है, परन्तु सीता का यह परित्याग उन्हें सम्पूर्ण भोगों को छोड़ कर वैराग्य पूर्वक रहने को विवश कर देता है।

श्रीरामगीता का आरम्भ शिव और पार्वती के संवाद से होता है। भगवान महादेव पार्वती से कहते हैं कि हे पार्वती! सीता परित्याग के उपरान्त संसार की मंगल-कामना से दिव्य रूप धारण करने वाले रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी राजर्षियों जैसा आचरण करने लगे हैं। वे उदार बुद्धि लक्ष्मण जी के पूछने पर भगवान राम उत्तम कथाएँ सुनाते थे। उन्होंने राजा नृग की कथा सुनायी, जो अत्यधिक प्रमादी थे एवं ब्राह्मण के पाप से उन्हें तिर्यक् योनि प्राप्त हुई। किसी समय जब रामचन्द्र जी एकान्त में बैठे थे। शुद्ध भाव वाले लक्ष्मण जी ने उनके पास जाकर भक्ति पूर्वक प्रणाम कर विनीत भाव से कहा, हे महामते, आप शुद्ध ज्ञान स्वरूप, संपूर्ण देह धारियों के आत्मा, सबके स्वामी होते हुए भी निराकार हैं। आपके चरण-कमल के जो भ्रमर हैं, उन भागवतों के साथ रहने वालों को आप ज्ञान की दृष्टि से दिखाई देते हैं। हे भवभयहर्ता मैं उन चरण कमलों का दास हूँ। हे प्रभु आप मुझे इस प्रकार उपदेश दीजिए कि मैं सुगमता से ज्ञान रूपी अपार सागर से पार हो जाऊँ। जब शरणागत लक्ष्मण का अज्ञान-अन्धकार का नाश करने के लिए प्रसन्न होकर भगवान श्रीरामचन्द्र जी ने ज्ञान का उपदेश दिया था। वही ज्ञानोपदेश ‘श्रीरामगीता’ के नाम से इस जगत् में प्रसिद्ध हुआ।

श्रीरामगीता

(श्लोक संख्या 1-20 सप्रसंग व्याख्या)

श्लोक-1, ततो जगन्मङ्गलमङ्गलात्मना
विधाय रामायणकीर्त्तिमुत्तमाम् ।
चचार पूर्वाचरितं रघूत्तमो
राजर्षिवर्यैरभि सेवितं यथा ॥ 1 ॥

प्रसंग- प्रस्तु श्लोक अध्यात्म रामायण के उत्तरकाण्ड के पंचम सर्ग 'श्रीरामगीता' से उद्धृत है। इसमें 'श्रीरामगीता' को वाल्मीकि रामायण आदि का मूल तथा श्रीरामचन्द्र जी का राजर्षि जैसा आचरण करने का कथन है।

व्याख्या- श्रीशिव जी ने पार्वती से कहा कि उसके बाद संसार के मंगल की मूल आधार मंगलरूप अर्थात् ब्रह्मानन्दस्वरूप अपनी मूर्ती करके रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी श्रवण करने वाले पुरुषों को मोक्ष देने वाली परमपवित्र और वाल्मीकि आदि अनेक रामायण ग्रन्थों की आधारभूत अर्थात् जिसके आधार से वाल्मीकि आदि अनेक रामायण ग्रन्थों की रचना हुई ऐसा रावण का वध और लोकापवाद के कारण सीता का परित्याग आदि कथारूप कीर्त्तिको स्थापन करके, तदनन्तर आपने पूर्वपुरुषों ने जो प्रजापालनादि सत्कर्म जिस प्रकार किये थे तथा जनक आदि बड़े-बड़े राजर्षियों ने जो सत्कर्म उनसे आदरपूर्वक ग्रहण किया था, उसी प्रकार वह प्रजापालनादि कार्यों को करने लगे।

श्लोक—2, सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना

रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः ।

राज्ञः प्रमत्तस्य नृगस्य शापतो

द्विजस्य तिर्यक्त्वमथाह राघवः ॥ 2 ॥

प्रसंग—

इसमें श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण की जिज्ञासा शान्त करते हुए राजा नृग की कथा सुनाते हैं।

व्याख्या—

उदार बुद्धि वाले गुरु और वेदान्त वाक्यों पर विश्वास करने वाले, सुमित्रा—नन्दन, विशुद्धात्मा लक्ष्मण जी के प्रश्न करने पर श्रीरघुकुलमणि भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने धर्म—अधर्म का निर्णय करने वाली अनेक प्रकार की प्राचीन कथा सुनाई। उन्होंने लक्ष्मण जी को राजा नृग की कथा सुनाते हुए कहा कि हे भ्राता! यदि विना जाने भूल से भी अधर्म हो जाता है तो उसका फल भोगना पड़ता है और ब्राह्मण की वस्तु का हरण करना आदि पाप से तो अत्यन्त ही भयभीत रहना चाहिये। देखो, पूर्वकाल में एक नृग नाम वाला बड़ा धर्मात्मा राजा था। वह नित्य ब्राह्मणों को अनेक गो दान करके देता था, उस राजा नृग की गौओं के समूह में एक ब्राह्मण की गौ भूलकर आ मिली थी, राजा को यह बात मालूम नहीं हुई, इसलिए उस राजा ने अनजाने से अन्य गौओं के साथ वह गौ भी दान कर दी, यह बात जब उस ब्राह्मण को मालूम हुई तो उसने दुःखित होकर राजा नृग को शाप दे दिया, इस शाप से राजा नृग सदृश धर्मात्मा पुरुष को भी तिर्यग्योनि अर्थात् गिरगिट की योनि में जाना पड़ा।

इसलिए अनजाने में ब्राह्मण का धन हरने से ऐसा परिणाम होता है और इससे यह भी सिद्ध हुआ कि तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के विना किसी प्रकार भी मुक्तिलाभ नहीं होता।

श्लोक—3, कदाचिदेकान्त उपस्थितं प्रभुं

रामं रमालालितपादपंकजम्।

सौमित्रिरासादितशुद्धभावनः

प्रणम्य भक्त्या विनयान्वितोऽब्रवीत् ॥ 3 ॥

प्रसंग— इसमें लक्ष्मण जी श्रीरामचन्द्र जी से प्रणाम कर विनीत भाव से प्रश्न करते हैं।

व्याख्या— इस प्रकार अनेक प्रकार की कथा श्रवण करने से और तदनुकूल श्रेष्ठ आचरण करने से शुद्ध अन्तःकरण वाले सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मण जी कुछ शिक्षा लेने के लिए एक समय श्रीरामचन्द्र जी के समीप गये। उस समय श्रीरामचन्द्रजी एकान्त स्थान में बैठे थे और उस समय सर्वशक्तिमान् भगवान् के चरणकमलों को लक्ष्मी जी का अवतार श्रीजानकीजी सेवन कर रही थीं। श्रीलक्ष्मणजी समीप में जाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक कहा।

श्लोक—4, त्वं शुद्धबोधोऽसि हि सर्वदेहिना—

मात्माऽस्यधीशोऽसि निराकृतिः स्वयम्।

प्रतीयसे ज्ञानदृशां महामते

पादाब्जभृंगाहितसंगसंगिनाम् ॥ 4 ॥

प्रसंग— इसमें लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजी के पर ब्रह्मा के रूप के गुण गान करते हैं।

व्याख्या— श्रीलक्ष्मणजी बोले कि हे भगवान्! आप शुद्ध ज्ञानस्वरूप हो। आप सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तर्यामी तथा आकृतिरहित हो, इस कारण ही आपका स्वरूप सबको प्रतीत नहीं होता है, किन्तु जो पुरुष भक्तिपूर्वक आपके चरणकमलों में भ्रमर की समान प्रेम करते हैं और जो पुरुष आपके चरणकमलों के दर्शन की इच्छा करके जीवन को व्यतीत करते हैं तथा जो पुरुष भगवद्भक्तों का संग करते हैं वे ही सत्संगी पुरुष आपकी भक्ति को प्राप्त होते हैं और उन्हीं भक्तियुक्त ज्ञानी पुरुषों को आपका (दर्शन) प्रत्यक्ष होता है, अन्य पुरुषों को नहीं।

श्लोक—5, अहं प्रपन्नोऽस्मि पदाम्बुजं प्रभो

भवापवर्गं तव योगिभावितम्।

यथाञ्जसाज्ञानमपारवारिधिं

सुखं तरिष्यामि तथानुशाधि माम् ॥ 5 ॥

प्रसंग— इसमें लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्र से संसार रूपी सागर के पार जाने के लिए ज्ञान की याचना करते हैं।

व्याख्या— हे स्वामी! योगियों के ध्यान करने योग्य और संसार—बन्धन से छुटाने वाले आपके चरणकमलों में मैं अनन्यगति होकर, शरण में आया हूँ, हे भगवान्! मैं नम्रतापूर्वक आपसे प्रार्थना करता हूँ कि संसार का मूल कारण एवं अज्ञानरूप

तथा अतिकठिनता से पार करने योग्य अपार समुद्र की तरह इस संसार सागर को किस प्रकार शीघ्र पार कर लिया जाय, ऐसा उपदेश देकर मुझे कृतार्थ कीजिए ।

श्लोक—6, श्रुत्वाऽथ सौमित्रिवचोऽखिलं तदा

प्राह प्रपन्नार्तिहरः प्रसन्नधीः ।

विज्ञानमज्ञानतमोपशान्तये

श्रुतिप्रपन्नं क्षितिपालभूषणः ॥ 6 ॥

प्रसंग— इसमें लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्र जी को सबके रक्षक मानते हुए गुण—गान करते हैं ।

व्याख्या— तदनन्तर! शरणागत पुरुषों का तत्काल दुःख दूर करने वाले राजशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी श्रीलक्ष्मणजी के सम्पूर्ण कथन को यथावत् श्रवण करके मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए और श्रीलक्ष्मणजी के अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करने के निमित्त वेदों के भी मान्य तत्त्वज्ञान को लक्ष्मण जी को बताने लगे अर्थात् ज्ञानोपदेश करने लगे ।

श्लोक—7, आदौ स्ववर्णाश्रमवर्णिताः क्रियाः

कृत्वा समासादितशुद्धमानसः ।

समाप्य तत्पूर्वमुपात्तसाधनः

समाश्रयेत्सद्गुरु मात्मलब्धये ॥ 7 ॥

प्रसंग— इस श्लोक में वर्ण और आश्रम का वर्णन किया गया है ।

व्याख्या—

इन चारों वर्णों में से जिस वर्ण के विषे जन्म ले तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, इन चारों आश्रमों में से जिस आश्रम को स्वीकार करे, उस वर्ण और आश्रम के अर्थ वर्णन करते हुए नित्यनैमित्तिक कर्मों को शास्त्रोक्त (शास्त्रों में कही हुई) विधि से आचरण करें और अन्तःकरण को शुद्ध करके वश में करें तथा कर्मानुष्ठानपूर्वक इन्द्रियनिग्रह आदि साधनों को धारण करें। इस प्रकार दोनों साधनों के सिद्ध होने के अनन्तरकर्मानुष्ठान का त्याग करके आत्मज्ञान की प्राप्ति के हेतु जो 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य हैं, तिनके अर्थ का विचार करने के निमित्त वेदवेत्ता और ब्रह्मनिष्ठ गुरु का सेवन करें।

श्लोक—8,

क्रिया शरीरोद्भवहेतुरादृता

प्रियाऽप्रियौ तौ भवतः सुरागिणः।

धर्मतरौ तत्र पुनः शरीरकं

पुनः क्रिया चक्रवदीर्यते भवः॥ 8॥

प्रसंग—

इसमें गुरु का महत्त्व तथा पूर्व जन्म में किये गये कर्मों से पुनर्जन्म होना। इस संसार चक्र का वर्णन किया गया है।

व्याख्या—

भगवान श्रीराम ने कहा — हे लक्ष्मण! सर्वप्रथम शास्त्रोक्त धर्म का पलन कर चित्त शुद्ध हो जाने पर वर्णाश्रम धर्म के कर्मों का त्यागकर शम दम आदि साधन सम्पन्न होकर आत्मज्ञान प्राप्ति के लिए गुरुशरण में जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में प्राणी पूर्वजन्म में जो कर्म करता है, उसका फल

प्राणी को शरीर रूप में मिलता है और इस जन्म में वह प्राणी विषयों में आसक्त होकर बर्ताव करता है, तब शास्त्रों के विषय उसे धर्म और अधर्म प्रतीत होते हैं, अर्थात् किसी प्राणी के मन को धर्माचरण प्रिय प्रतीत होता है और किसी के मन को अधर्म प्रिय प्रतीत होता है, इस प्रकार इस जन्म के लिए जो कर्मसञ्चय से प्राणी को फिर जन्म धारण करना पड़ता है, उस जन्म में वह फिर कर्म करता है, इस प्रकार कर्म से जन्म और जन्म में कर्म होता है, इस प्रकार संसार—चक्र चलता रहता है।

श्लोक—9, अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणं

तद्भानमेवात्र विधौ विधीयते।

विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी

न कर्म तज्जं सविरोधमीरितम् ॥ 9 ॥

प्रसंग— इस श्लोक में संसार चक्र का मूल कारण अज्ञान कहा गया है। अतः ज्ञान का आश्रय ही लेना चाहिए।

व्याख्या— श्रीरामचन्द्र जी ने कहा कि हे लक्ष्मण! इस संसारचक्र का मूल कारण अज्ञान ही है। संसार से मुक्त होने के लिए शास्त्रों में जो विधि वर्णित की गयी है वह यह है कि अज्ञान को दूर करें और उस मूलकारणरूप अज्ञान का नाश नहीं होता है; क्योंकि कर्म अज्ञान से ही उत्पन्न हुए हैं, इस कारण कर्मों का और अज्ञान का विरोध अर्थात् द्वेषभाव नहीं है और रीति ऐसी है कि जिसका जिससे विरोध होता

है, वह उसका नाश कर सकता है, इस कारण अज्ञान का विरोधी ज्ञान को बताया गया है।

श्लोक—10, नाज्ञानहानिर्न च रागसंगयो

भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्भवेत्।

ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता

तस्माद्बुधो ज्ञानविचारवान्भवेत् ॥ 10 ॥

प्रसंग—

मोक्ष प्राप्ति कर्मानुष्ठान नहीं अपितु आत्मज्ञान से संभव होती है।

व्याख्या—

कर्मानुष्ठान से अज्ञान का भी नाश नहीं होता है और विषयों से आसक्ति भी दूर नहीं होती है, किन्तु जिसका स्वर्गादिरूप फल नाशवान् होता है ऐसे उस प्राणी के कर्म से प्राणी फिर संसार को भोगने लगता है। संसार की निवृत्ति कर्मानुष्ठान से नहीं होती है। इस प्रकार कर्मानुष्ठान से मोक्षप्राप्ति की अभिलाषा करना व्यर्थ है। इस कारण विवेकी पुरुषों को चाहिए कि जिससे आत्मज्ञान होता है ऐसे वेदान्त वाक्यों का विचार करना चाहिए या ध्यान करना चाहिए।

श्लोक—11, ननु क्रिया वेदमुखेन चोदिता

तथैव विद्या पुरुषार्थसाधनम्।

कर्त्तव्यता प्राणभृतः प्रचोदिता

विद्यासहायत्वमुपैति सा पुनः ॥ 11 ॥

प्रसंग— इसमें ज्ञान और कर्म को मोक्ष का मूल कहा गया है।

व्याख्या— ज्ञान और कर्म इन दोनों की प्राप्ति जब होती है तब मोक्ष मिलता है, इन दोनों में किसी एक से अर्थात् केवल ज्ञान से या केवल कर्म से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इस प्रकार कहने वाले कोई पुरुष हैं उनको समुच्चयवादी कहते हैं। इस प्रस्तुत विषय पर उनकी ऐसी शंका है कि जिस प्रकार “ब्रह्मविदाप्नोति” परम्—ब्रह्मज्ञानी उत्तमपद (मुक्ति) को प्राप्त होता है इत्यादि वचनों के द्वारा श्रुति—स्मृति—पुराण आदिरूप वेद के मुख करके ज्ञान को परमपुरुषार्थ रूप मोक्ष का साधन वर्णन किया है। उसी प्रकार “उपाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः। तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम्” — अर्थात् जिस प्रकार आकाश के विषे पक्षी दोनों ही पक्षों से उड़ सकते हैं एक से नहीं, किसी प्रकार ज्ञान और कर्म दोनों ही से शाश्वत (सनातन) ब्रह्म की प्राप्ति होती है, अकेले ज्ञान या कर्म से नहीं होती है इत्यादि वचनों के द्वारा ज्ञान के साथ कर्म को भी ब्रह्मप्राप्ति का साधन वर्णन किया गया है और नित्य नैमित्तिक कर्म प्राणी को अवश्य करने चाहिये ऐसा शास्त्र कहते हैं। अतः उनके न करने से प्रत्यवाय उत्पन्न होकर ज्ञान की उत्पत्ति ही न होगी तब मोक्षप्राप्ति कैसे होगी इससे यह सिद्ध होता है कि कर्म मोक्ष की प्राप्ति में ज्ञान की सहायता करता है।

श्लोक—12, कर्माकृतौ दोषमपि श्रुतिर्जगौ
तस्मात्सदा कार्यमिदं मुमुक्षुणा ।
ननु स्वतन्त्रा ध्रुवकार्यकारिणी
विद्या न किञ्चिन्मनसाप्यपेक्षते ॥ 12 ॥

प्रसंग— इसमें कर्म न करने पर दोष का कथन है ।

व्याख्या— भगवान राम कहते हैं कि कर्म न करने से श्रुतियों ने दोषों का भी विधान किया है । श्रुतियों ने कर्म न करने पर दोष का वर्णन किया है, इस कारण मुमुक्षु पुरुषों को कर्म नित्य करना चाहिये । इस पूर्वोक्त विषय के उत्तर में सिद्धान्ती का वचन ऐसा है कि जिस प्रकार प्रकाश अन्धकार का नाश कर सकता है, उसी प्रकार ज्ञान स्वतन्त्र से अर्थात् विना किसी की सहायता के ही स्थिर अर्थात् अविनाशी मोक्षरूप कार्य को प्राप्त कराता है, ज्ञान कदापि अपने कार्य में किसी की सहायता की इच्छा नहीं करता है तो यह कथन ठीक नहीं है ।

श्लोक—13, न सत्यकार्योऽपि हि यद्वदध्वरः
प्रकांक्षतेऽन्यानपि कारकादिकान् ।
तथैव विद्या विधितः प्रकाशितै—
र्विशिष्यते कर्मभिरेव मुक्तये ॥ 13 ॥

प्रसंग— इसमें ज्ञान व कर्म को एक—दूसरे का सहयोगी कहा गया है । दोनों की समाराधना से मोक्ष की उपलब्धि कही गई

है।

व्याख्या—

यदि कोई यह कहे कि ज्ञान स्वतन्त्र है और निश्चय ही फल देने वाला है, तो यह ठीक नहीं है; क्योंकि जिस प्रकार यज्ञ सत्य कर्म होने पर भी अन्य कारकादि की आकांक्षा रखता है उसी प्रकार विधि के द्वारा प्रकाशित कर्म से ज्ञान मुक्ति का साधक हो सकता है अतएव कर्मों का त्याग युक्तियुक्त नहीं है। जैसे वह यज्ञ अपनी सांगोपांग समाप्ति के अर्थ प्रयाज अनुयाज आदि अन्य अंगों की अपेक्षा करता है, उसी प्रकार ज्ञान का फल मोक्ष तो अवश्य ही होगा, वह ज्ञान कर्मानुष्ठान की सहायता की अपेक्षा तो अवश्य करता है, तब ही मोक्ष देने में समर्थ होता है, कर्मानुष्ठान की सहायता के विना ज्ञान कदापि मोक्ष देने में समर्थ नहीं होता है; इसलिए कर्म एवं ज्ञान का मणिकांचन संयोग ही मोक्ष प्राप्ति के लिए उत्तम है।

श्लोक—14, केचिद्वदन्तीति वितर्कवादिन—

स्तदप्यसद्वष्टविरोधकारणात्।

देहाभिमानादभिवर्द्धते क्रिया

विद्या गताहङ्कृतितः प्रसिद्धयति ॥ 14 ॥

प्रसंग—

इसमें श्रीरामचन्द्र जी कहते हैं कि केवल कर्म या ज्ञान की साधना अर्थात् एक की साधना से मोक्ष संभव नहीं है।

व्याख्या—

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण! जिस प्रकार केवल कर्म को मोक्ष का साधन नहीं माना जा सकता उसी प्रकार

केवल ज्ञान भी मोक्ष का साधन नहीं हो सकता, इस प्रकार जो कोई कुतर्कवादी कहते हैं वह ठीक नहीं है; क्योंकि कर्म और ज्ञान का प्रत्यक्ष विरोध प्रतीत होता है। देखो, जड़ देह के विषय में मैं चेतन हूँ ऐसा अभिमान होने पर प्राणी के हाथ से कर्म वृद्धि को प्राप्त होता है और देह के विषय अहम् ममत्वरूप अभिमान दूर होने से प्राणी को ज्ञान की प्राप्ति होती है, इस प्रकार परस्पर विरोध रखने वाले ज्ञान और कर्मरूप दो पदार्थ परस्पर सहायक होकर, किसी कार्य को कैसे कर सकते हैं? अर्थात् कदापि नहीं कर सकते; क्योंकि कर्म देहाभिमान से होते हैं और ज्ञान अहंकार का नाश होने पर होता है।

श्लोक—15, विशुद्धविज्ञानविरोचनाचिंता

विद्यात्मवृत्तिश्चरमेति भण्यते ।

उदेति कर्माखिलकारकादिभि—

निहन्ति विद्याऽखिलकारकादिकम् ॥ 15 ॥

प्रसंग— इसमें वेदान्त से तत्त्व ज्ञान का कथन है।

व्याख्या— हे लक्ष्मण! वेदान्त वाक्यों के विचार के द्वारा विशुद्ध विज्ञान के प्रकाश से उद्भासित चरम आत्मवृत्ति को विद्या या आत्मज्ञान कहते हैं। इससे पृथक् कर्म सम्पूर्ण कारकादि की सहायता से होते हैं; परन्तु विद्या समस्त कारकादिका (अनित्य होने से) नाश कर देती है। दूसरे शब्दों में निर्मल आत्मतत्त्व का ज्ञान कराने वाले वेदान्त वाक्यों का पूर्ण रीति

से विचार करने पर अन्तिम जो अन्तःकरण की ब्रह्माकार वृत्ति होती है, उसको विद्या (तत्त्वज्ञान) कहते हैं और कर्म सम्पूर्ण प्रयाज अनुयाज आदि कारकों के योग से उदय को प्राप्त होता है और तत्त्वज्ञान सम्पूर्ण कारक कर्तृत्वबुद्धि आदि को नष्ट करता है, इस प्रकार कर्म का और ज्ञान का परस्पर विरोध है। अतएव कर्म और ज्ञान का एकत्र निवास कदापि नहीं हो सकता। कर्म चित्तशुद्धि करता है, और कारण ज्ञान की उत्पत्ति का कारण मात्र है। ज्ञान को अपने फलरूप मोक्ष के देने में कर्म की अपेक्ष बिलकुल नहीं होती है।

श्लोक—16, तस्मात्त्यजेत्कार्यमशेषतः सुधी—

विद्याविरोधान्न समुच्चयो भवेत्।

आत्मानुसन्धानपरायणः सदा

निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः ॥ 16 ॥

प्रसंग— इसमें जितेन्द्रिय बनना तथा सकाम कर्मों का त्याग करने का कथन है।

व्याख्या— अतएव सभी इन्द्रियों के विषयों से निवृत्त होकर सतत आत्मानुसन्धान में प्रवृत्त बुद्धिमान पुरुष को अखिल कर्मों का त्याग कर देना चाहिए; क्योंकि विद्या विरोधी होने से कर्म का उसके साथ समुच्चय नहीं हो सकता। अतएव विवेकी (मुमुक्षु) पुरुष कर्म का सर्वथा त्याग करें अर्थात् सकाम कर्मों को तो कदापि करें ही नहीं, परन्तु चित्त की

शुद्धि होने पर्यन्त केवल नित्य नैमित्तिक कर्मों को करते रहना चाहिए, तदनन्तर सम्पूर्ण इन्द्रियों की वृत्तियों को शब्द-स्पर्श आदि विषयों से छुड़वाकर केवल परमानन्दमय आत्मरूप में लीन होने के उपाय में तत्पर रहना चाहिए।

श्लोक—17, यावच्छरीरादिषु माययात्मधी—

स्तावद्विधेयो विधिवादकर्मणाम्।

नेतीति वाक्यैरखिलं निषिध्य त—

ज्ज्ञात्वा परात्मानमथ त्यजोत्क्रियाः ॥ 17 ॥

प्रसंग— इसमें 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' का भाव समाहित है।

व्याख्या— तदनन्तर श्रीराम लक्ष्मण से कहते हैं कि मनुष्य का माया से मोहित होना स्वाभाविक है, लेकिन जब तक शरीरादि में आत्मबुद्धि रही है तब तक तो उसे विधि प्रतिपादित कर्म करने ही चाहिए वैसे तो प्राणी अज्ञान के कारण शरीर इन्द्रिय आदि अनात्म (जड़) वस्तुओं के विषे आत्मबुद्धि करता है, अर्थात् मैं कर्ता हूँ भोगता हूँ इत्यादि सोचता है, तब तक तो प्राणी को "यजेत—यज्ञ करना चाहिए।" इत्यादि कर्मबोधक वैदिक वाक्यों का आज्ञा पालन करना पड़ता है और जब अहंकार दूर हो जाता है तब सम्पूर्ण कर्म छूट जाते हैं, इस कारण पुरुष "नेति नेति — यह जगत् सत्य नहीं है; सत्य नहीं है" इत्यादि वेदवाक्यों के द्वारा सम्पूर्ण जगत् मिथ्या है ऐसा निश्चय करके परमात्मा ही जगत् में सर्वथा सत्यस्वरूप है ऐसा वह जान जाता

और इस प्रकार परमात्म स्वरूप का ज्ञान होने के अनन्तर वह कर्मों को त्याग देता है।

श्लोक—18, यदा परात्मात्मविभेदभेदकं
विज्ञानमात्मन्यवभाति भास्वरम्।
तदैव माया प्रविलीयतेऽञ्जसा

सकारका कारणमात्मसंसृतेः ॥ 18 ॥

प्रसंग— इसमें परमात्मा और आत्मा का भेद दूर होने पर आत्मा का माया से मुक्ति आदि का कथन है।

व्याख्या— जब परमात्मा और आत्मा के भेद को दूर करने वाला प्रकाशमय विज्ञान अपने (मनुष्य के) अन्तःकरण में भासित होता है, तब आत्मा के लिए संसार बन्धन का कारण माया अनायास ही कारकादि समस्त भूतों के साथ नष्ट हो जाती है। अवधेय है कि एक आत्मा के ही जीव और ईश्वर ये दो भेद, दोनों की भिन्न उपाधि के कारण हुए हैं। ईश्वर की उपाधि माया और जीव की उपाधि अन्तःकरण है। अब उपाधि क्या वस्तु है? वह एक दृष्टान्त के द्वारा जानी जा सकती है। जिस प्रकार एक बड़े तालाब का जल बहाव या तेज हवा के द्वारा वृक्षों की जड़ के थांबलों में जाकर भर जाता है, इस दृष्टान्त में तालाब में के जल को ईश्वर का दृष्टान्त और वृक्षों की जड़ के जल को जीव का दृष्टान्त जानना चाहिये। जिस प्रकार तालाब और वृक्ष की जड़ का थांबला इन दोनों स्थानों का जल एक ही होता है उसी

प्रकार आत्मरूप में जीव और ईश्वर भी एक ही हैं। तालाब के जल की चारों ओर का घेरारूप बन्धन और ईश्वर की माया उपाधि है और वृक्ष के जल की थांबला और जीव की अन्तःकरण उपाधि है। परमात्मा और जीव के भेद का नाश आत्मतत्त्व के ज्ञान से होता है, प्रकाश-रूप आत्मतत्त्व का अन्तःकरण में स्फुरण होते ही अविद्या अपनी सामग्रीसहित अर्थात् अन्य जन्म देने वाले कर्मों करके सहित नष्ट हो जाती है। आत्मा का संसार बन्धन में पड़ने का कारण यह अविद्या ही होती है।

श्लोक—19, श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता च सा

कर्थ भविष्यत्यपि कार्यकारिणी ।

विज्ञानमात्रादमलाद्वितीयत—

स्तस्मादविद्या न पुनर्भविष्यति ॥ 19 ॥

प्रसंग—

इस श्लोक में परमात्मा तत्त्व एक मात्र विज्ञान स्वरूप निर्मल और अद्वितीय है। इस तत्त्व का उल्लेख है।

व्याख्या—

श्रुति वाक्यों के द्वारा उत्पन्न ज्ञान से नष्ट हो जाने पर वह माया, पुनः अपना कार्य करने में कैसे समर्थ होगी? क्योंकि परमात्मतत्त्व एक मात्र विज्ञान स्वरूप निर्मल और अद्वितीय है अतएव उसका ज्ञान हो जाने पर अविद्या या माया पुनः उत्पन्न नहीं होगी। जैसे – “तत्त्वमसि— वह ब्रह्म तू (जीव) है” इत्यादि महावाक्यों के आधार से उत्पन्न हुए ज्ञान से नष्ट होकर, अविद्या क्या फिर किसी रीति से अपने कार्य

(मोह, संसार) को कर सकेगी? अर्थात् कदापि नहीं कर सकेगी। रज्जु में सर्प का भ्रम होने से भय होता है, परन्तु जब 'रज्जु है, सर्प नहीं है' ऐसा पूर्ण ज्ञान हो जाता है, जब प्राणी को रज्जु में 'सर्प' है ऐसी फिर प्रतीति होकर भय नहीं होता है। स्पष्ट है कि शुद्ध और अद्वितीय केवल आत्मतत्त्व के ज्ञान के द्वारा अविद्या का नाश हो जाता है, उस पदार्थ या जीव के लिए वह अविद्या फिर उत्पन्न नहीं होती है।

श्लोक—20, यदि स्म नष्टा न पुनः प्रसूयते

कर्त्ताहमस्येति मतिः कथं भवेत् ।

तस्मात्स्वतन्त्रा न किमप्यपेक्षते

विद्या विमोक्षाय विभाति केवला ॥ 20 ॥

प्रसंग— ज्ञान की प्राप्ति और अविद्या का नष्ट होना तथा अंह भाव रहित कर्म ही मोक्ष का साधन है।

व्याख्या— अविद्या या माया के विषय में लक्ष्मण को समझाते हुए भगवान राम कहते हैं कि यदि यह प्रश्न हो कि नष्ट हुई वह अविद्या यदि पुनः उत्पन्न ही नहीं हो सकती तो "मैं कर्त्ता हूँ" यह बुद्धि कर्त्ता में कैसे आ सकती है? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि ज्ञान स्वतन्त्र है तथा उसे जीव को मोक्ष के लिए अन्य किसी कर्मों की अपेक्षा नहीं है, ज्ञान तो मोक्ष प्रदाता रूप शोभायमान है। पुरुष को 'मैं कर्म करता हूँ' ऐसा अहंकार होना ही वास्तव में अविद्या है; यदि

वह अविद्या ही नष्ट हो जाये और फिर उत्पन्न नहीं हो तो पुरुष को 'मैं अमुक अमुक कर्म करने वाला हूँ यह बुद्धि क्या हो सकती है? अर्थात् फिर ऐसी बुद्धि कदापि नहीं होती है, इस कारण ही कहते हैं कि ज्ञान को पूर्ण स्वतन्त्रता है और किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं है, वह ज्ञान अकेला ही मोक्ष के देने में शोभायमान होता है।